साधक–धर्म

तत्सदात्मने नमः

जब साधक के अन्दर भगवान अपने अशंभूत सहयोगीभावों के साथ आकर बैठ गया– ज्ञानरूप में राम, विवेक स्वरूप लक्ष्मण, भाव भरत और सतसंग शत्रुघ्न आ गये तो उसके अन्दर उल्लास आ जाता है। उसका मन– राजा दशरथ,आनंदित हो उठता है,

'परमानंद पूरि मन राजा। कहा बुलाइ बजावहु बाजा।।'

साधक के शरीररूपी अवध में खुशियाली छा जाती है। अन्दर के सारे अवयव ईश्वरीयभवना से उल्लसित हो उठते हैं।

'गृह गृह बाज बधाव शुभ प्रगटे सुषमाकंद।
हरषवंत सब जहं तहं, नगर नारि नर वृदं।।'

तो अब साधक का धर्म बनता है कि वह अपनी इस अनुकूल मनःस्थिति का लाभ उठाए, और दुगने उत्साह से साधना में लगे,भजन में तेजी लाये। साधक अनपेक्ष रहकर साधना करे। उसे इच्छा रहित होना चाहिए।

'अनारम्भ, अनिकेतअमानी,
अनध अरोष दक्ष विज्ञानी।।'

गीता में भी कहा गया है–

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथा।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे
प्रियः।।

इच्छा रहित होकर शरीर से सेवा,और मन से भजन–यही दो काम हैं, जो साधक को करना है। जन्म जन्मांतर से शरीर के द्वारा जो खराब कर्म किये गये हैं, उसका कर्जा शरीर के द्वारा सेवा करके चुकाया जाता है। और जो विचार या संकल्प के द्वारा पाप किये गये हैं, उन्हें मन से भजन करके खतम किया जाता है। लेकिन इसमें यह जरूरी है, कि तुम्हारी सेवा, तुम्हारा भजन अनपेक्ष हो। कोई इच्छा न लगी हो पीछे, कि हम सेवा करते हैं और सेवा के बदले हमें यह मिले–वह मिले। भजन करते हैं,फिर कोई मांग कर लिया,यह गलत हो जायगा। इससे लाभ नहीं मिलेगा। इनर्जी इकट्ठी नहीं हो पायगी। और यदि सेवा अनपेक्ष होगी, तो यह झाड़ू लगाना,भोजन बनाना सब भजन हो जाता है। इच्छा रहित सेवा भजन ही है। इसलिए साधक को चाहिए कि कोई कामना न करें,

सकल कामनाहीन जे रामभगति रस लीन।

मन का कहना न माने, इष्ट का कहना करे। जो कुछ कहे, वही काम करे। और जो भी सेवा भजन करे, भगवान को समर्पित कर दे। प्रतिदिन शाम-सुबह इष्ट के सामने बैठकर हाजिरी दे, प्रार्थना करे कि हे भगवान, मैं आपका हूँ, मेरी संभाल करना। यदि अपने भरोसे करोगे तो गोता खाओगे। क्योंकि इस मन की कलाबाजी को अभी तुम पूरी तरह से नहीं जानते। कब कहां पटक देगा, पता नहीं पा सकते। इसलिए इसकी लगाम अपने भगवान के हाथों में दे दो और अनपेक्ष हो जाओ। जो ऐसा कर लेता है, वह साधक शीघ्र प्रगति कर जाता है। सेवा, समर्पण और निष्काम भाव, ये जरूरी बातें हैं साधक के लिए।

बहुत से साधक होते हैं, जो खूब सेवा करेंगे, भजन भी करेंगे और मन में इच्छा रहेगी कि भगवान मिल जाय। समझो, सब गुड़ माटी कर दिया। इस रास्ते में यह भी इच्छा ठीक नहीं है कि भगवान मिल जाय। समर्पण हो गया तो अब हमारी इच्छाएं कहां रहीं, हमने अपना सब कुछ तो दे दिया है अपने इष्ट देव को। अब हममें हमारा कुछ रहा नहीं, फिर इच्छा कैसी? इस रास्ते में दो तरह के लोग हैं- एक हैं प्रवृत्ति मार्गी, जो कुछ कामना लेकर भजन करते हैं, उनका उद्धार नहीं है। बार-बार जन्मना और मरना होगा। दूसरा है निवृत्तिमार्ग। इसमें कामना रहित होकर, संसार के आवागमन से निवृत्त होने का नियम है। इसलिए निवृत्ति मार्ग में किसी प्रकार की इच्छा करना खराब माना जाता है। इच्छा का परित्याग कर पाना हंसी खेल नहीं है, बहुत कठिन काम है। बज्र की तरह बन जाओगे तब यह हो पायेगा। इसलिए यह भजन का रास्ता बड़ा कठिन है-

कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा, जाति वरण कुल खोय।।

भगवान को पाना चाहते हैं, और भगवान पर पूरा विश्वास नहीं कर पाते। उसके हांथों में सब कुछ सौंपकर निश्चिन्त हो जाना चाहिए।

भगवान की माया के दो विभाग हैं। एक विद्या और एक अविद्या। मनुष्य का अन्तःकरण इन दोनों का कार्यक्षेत्र है। चित्त में कभी सद्वृत्ति और कभी असद्वृत्ति आती है। इसी अन्तःकरण में यह उठापटक चलती रहती है। इसे अपने अनुकूल बनालेना ही साधना है। अगर हम विजातीयों की पकड़ में रहेंगे, तो वह हमें संसारोन्मुख बनाये रखेंगे। भगवान से दूर करेंगे। यदि सजातीयों का साथ पकड़ेंगे तो भगवान की ओर ले जायेंगे। इसलिए साधना की प्रक्रिया में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मन के विकार हटाये जाते हैं। ज्ञान, विवेक, वैराग्य, संतोष, क्षमा, दया ये सद्गुण लाये जाते हैं।

हिन्दूधर्म आज एकदम डगमगा गया है। भरे पड़े हैं धर्मग्रंथ, लेकिन उनमें लिखी बातें लोगों के पल्ले नहीं पडती हैं। रोज गीता रामायण भागवत सुनते हैं, और लोभ मोह इर्ष्या द्वेष को पाले हुए हैं। जो स्वभाव बना चला आ रहा है, उसमें रत्ती भर बदलाव आता नहीं,

क्या मिला ऐसे सतसंग से? कुछ किया जाय कि अपने में बदलाव आये, हम कुछ अच्छे बनें। अच्छे गुणों को अपनाते चले, बुराइयों का छोडते चलें। धर्म की बातें व्यावहारिक हैं, करने की हैं। हर व्यक्ति अच्छी बातों को आचरण में ले, तब समाज भी अच्छा बन सकता है। क्योंकि व्यक्तियों से ही समाज बनता है।

कहते हैं राम राज्य का समाज बहुत अच्छा था। क्यों अच्छा था? क्योंकि हर आदमी अच्छा था। सभी लोग सद्गुणी थे, सदाचारी थे। तो समाज अच्छा था।

साधकों के लिए सदाचरण बहुत आवश्यक है। साधक को अनुशासित रहना चाहिए। उसका आसन दृढ, आहार दृढ, निद्रा दृढ होना चाहिए। महापुरुषों का अनुसरण करे, सात्विक आहार करे, नियम से रहे। मन शुद्ध रखें, इन्द्रियां अचंचल रहे, नियम से भजन करे। साधक को एकांतप्रिय होना चाहिए।

ऐसे लक्षण साधक में हों, और वेग से साधना में लगे, तो निहाल हो जाता है। वेगलाने के लिए, साधक में तीव्र वैराग्य होना चाहिए। खाने-पीने, रहने-सहने के नियम, कोई खास बातें नहीं हैं। वह तो अपने आप होते रहते हैं। उनमें चित्त फंसाने की आवश्यकता नहीं रह जाती है। जब साधक में तीव्रतर वैराग्य होता है, त्याग आ जाता है, तो उसका मन भजन में लीन हो जाता है। अपने अन्दर से ही मार्गदर्शन मिलने लगता है। परमात्मा का सहारा मिलने लगता है।

देखो जब सीता की खोज में वानर समुद्र के किनारे पहुंचे। सोचने लगे कि सीता का पता हम लगा नहीं पाए। ऐसे लौट कर जाएंगे, तो वहां सुग्रीव हमें मार डालेगा। इससे तो अच्छा है, कि यहीं हम लोग मर जायें। मरने को तैयार हो गये। तो भगवान ने मदद दे दिया,सम्पाती मिल गया। वहां उन बन्दरों की बात जटायु का भाई, वह गीध सम्पाती, सुन रहा था। मन ही मन कहने लगा-मरो तो जल्दी तुम लोग। बहुत दिनों से भर पेट खाने को नहीं मिला। बन्दरों ने उसे देखा, तो किसी ने जटायु की बात चला दी, कि जटायु बड़ा सज्जन था। भगवान के लिए अपने प्राण दे दिये। सम्पाती ने जब जटायु का नाम सुना, तो बन्दरों से पूछा, जटायु का क्या हुआ? तो बन्दरों ने बताया, कि रावण ने सीता का हरण कर लिया है। उसे छुडाने के प्रयास में रावण से झगड़ा किया, मर गया। तो वह बोला, जटायु मेरा भाई था। अच्छा, तो मुझे ले चलों समुद्र के पास, मैं उसे तिलांजलि दूंगा। अरे! भला, गीध ने क्या तिलांजलि दिया होगा? लेकिन मनुष्यता की बात लिख दिया, तुलसी दास जी ने। बन्दर या गीध, सब मनुष्य की भांति व्यवहार करते दिखाए गए हैं। बिल्कुल अस्वाभाविक असंम्भव बात है, तो भी लोग विचार नहीं करते। असल में यह सब, गोस्वामी जी ने अन्तर्जगत की बात लिख दी है। यह मानस गोस्वामी जी के हृदय की लीला है। तो देखो, यह शरीर ही मनुष्य है। यह पाँच तत्वों का बना हुआ है। इसके अन्दर अठारह तत्वों का सूक्ष्म शरीर है। जब साधक स्थूल साधना से आगे बढ़ता है, सूक्ष्म

में प्रवेश करता है तो उसे निचोड़ मिल जाता है। तरीका मिल जाता है। उसे अमल में लाता है। आत्मसात करता है, तो फिर उसे डिग्री मिल जाती है। लेकिन जब मन उस उपलब्धि का आनन्द लेना चाहता है, जब साधक इसका पता लेना चाहता है, कि मैंने इतना किया। आलिंगन करना चाहता है, परिणाम या निष्कर्ष लेना चाहता है, तो देखो प्रकृति कैसे काम करती है। जहाँ यह ईगो आया, तो तत्काल उसे सावधान होना चाहिए। यदि उसके पास विवेक हो, तो कन्ट्रोल कर लेगा। इस प्रकार से मन के अन्दर बड़ी बारीकियां हैं। किसी को कंचन-कामिनी से बाधा आ सकती है। किसी को और किसी इच्छा से, या दूसरे प्रकार से। तो यह अपने अन्दर ही देखना पड़ेगा। उसका समाधान अन्दर से लेना होता है। एक दूसरे से अलग ढंग से इसकी अपनी निजी पृष्ठभूमि बनानी पड़ेगी। प्रक्रिया तो एक ही है, रूप थोड़ा भिन्न हो जाता है। साधक के अन्तःकरण के आधार पर। गोस्वामी जी ने अपनी बात लिख दी। ब्यास जी ने तो अपना ढंग बता दिया।

अब हमें अपना-अपना देखना है। गुजरना तो सबको उसी रास्ते से है। विजातीय तत्वों की लड़ाई में कौन कैसे मरे? कैसे कहाँ, क्या करना है, देखना पड़ेगा। इस प्रकार साधक में अगर वेग है, तो उस वेग के आधार से, वह आगे बढ़ जायेगा। जल्दी उठ जायेगा। ऐसे तो बहुत लोगों की समझ में ही नहीं आता। यह तो अपनी-अपनी बुद्धि की बात है। समझ के स्तर की बात है। जो एम.ए. तक पढाई किए हुए है उसमें और प्राइमरी वाले में अन्तर होता है। पढाई तो दोनों कर रहे हैं लेकिन प्राइमरी वाले को उसके बराबर पहुँचने में बहुत समय लगेगा। और यहाँ तो एम.ए. वाला ही समझ पाता है, तो इन प्राइमरी वालों को त्याग कराकर क्या किया जाय? डिग्री सेक्सन में प्राइमरी की पढ़ाई कैसे की जाय? भगवान का कोर्स तो माया के बाद शुरू होता है। अभी तो इनका माया का कोर्स पूरा होना है। इनके मन में पैसे की कल्पना बनी है, विषय की कल्पना बनी है, खाने की कल्पना है- इन सबसे जब निवृत्त हो जाय, तब तो भगवान की बात पल्ले पड़ेगी। यह मूल चीज इसके पीछे काम करती है। यह तो हम भी कहते हैं,तुम भी कहते हो, सब कहते हैं, कि भगवान सबके लिए बराबर है। लेकिन जब हो पाए तब तो। भगवान के लिए तो प्राइमरी वाला और एम. ए. वाला, दोनों ही पढ़ाई कर रहे हैं। लेकिन दोनों की पढाई में कोर्स अपना-अपना है, स्तर अपना-अपना है। बराबरी नहीं हो सकती। इसलिए जो साधक की आतंरिक स्थिति है, वह मूल बात है, जिससे अन्तर पडता है। यदि किसी साधक की वासना अभी खाने-पीने में है, तो भगवान का विषय उसके लिए बाद की बात हो गयी। खाना पीना आगे आ गया। और जो साधक हर विषय को छोड़कर, भगवान को ही प्राथमिकता से लेता है-उसका अधिकार ईश्वर में विशेष होता है। इस प्रकार साधकों की श्रेणी बनती है।जैसे आई.ए.एस. वगैरह के टेस्ट (परीक्षण) में छांट लिये जाते हैं मेरिट (योग्यतासूची) वाले। बहुत लोग फेल हो जाते हैं। कुछ निकल भी जाते हैं। ऐसे ही साधक भी, जिनमें योग्यता है, आ जाते हैं। ऐसे तो किसी के भी अन्दर आवेश में, क्षणिक

भावना बन जाती है। उसका कुछ मतलब नहीं होता। सजातीय संस्कार होना चाहिए। इधर के संस्कार होंगे, तो सब हो जाता है। देख लिया जाता है, कैसा है क्या कर सकता है, कैसे चलता है, कितनी प्रगति है? बस साधक आगे बढ़े, पीछे न मुड़े। इच्छा न हो कोई, बस इच्छा न हो। आहार-विहार सब आ गया। अगर साधक साधना में लगा है। उसमें ठीक चल रहा है, तो क्या खाता है, कैसे रहता है, कब सोता है, यह सब गौण हो जाता है। मुख्य चीज़ है वेग-साधना की गति। अब जैसे कोई साधक आज एडमिट हुआ। हाँ आओ बैठो। कैसा क्या है? समझ कर, उसकी गति के अनुसार एडजस्टिंग कर दी जाती है। अगर वह साधक तीव्र वैराग्य वाला है, अच्छे वेग से चलता है तो, वह तेज़ी से आगे बढ़ जायेगा। इसमें यह नहीं होता, कि यह जूनियर (कनिष्ठ) है या सीनियर (वरिष्ठ) है। वह तीव्र गति वाला सबसे आगे बढ़ जायेगा। गति होना चाहिये। अगर टाप (चोटी) वाले (सिनियर) प्रैक्टिकल में आगे नहीं आएंगे, तो 50 प्रतिशत से ज़्यादा पाने वाले नहीं हैं।

देखो जब समुद्र के किनारे बन्दर आए-समुद्र कैसे पार करें? किसी ने, कहा कि मै आधी दूर तक जा सकता हूँ। 'निज-निज बल सब काहू भाषा।' अंगद ने कहा, मैं पार जा सकता हूँ, पर लौटने में सन्देह है। हनुमान और अंगद ये दो वानर मुख्य हैं। अंगद है- अनुराग। अनुराग इस संसार समुद्र को लांघ सकता है। अनुराग के आवेश में, साधक इस संसार का त्याग कर सकता है। अनुराग उसे कहते हैं। जब अपने इष्ट के प्रेम में साधक डूब जाता है, रोमांच हो जाता है,अंग गदगद हो जाता है। आंसूभर आते हैं। लेकिन यह ज़्यादा देर टिकता नहीं। जब तक आवेश है, प्रेम के आंसू आएंगे, रोमांच होगा। आवेग शांत होने पर आंसू नहीं आते। ऐसा है अनुराग। अगर आवेश बराबर बना रहे, तो अनुराग बहुत बड़ी चीज़ है। लेकिन ठंडा पड़ जाता है। अगर उसी आवेश में निकल गये, तो निकल गये। नहीं तो रह गये, तो रह गए। साधक का अनुराग ठंडा न पड़ना चाहिये। कितनी भी विपत्ति आये, तकलीफ आये, अनुराग बना रहे, तो काम बन जाय। साधक के हृदय में, इष्ट के प्रति, जो अनुराग का वेग एक रस बना रहता है, वही है वैराग्य। दृढ़ अनुराग ही वैराग्य है। यही वैराग्य है हनुमान। प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजन तनय। यह वैराग्य साधना को गति देता है,पूर्णता तक पहुंचा देता है। वैराग्य के आने पर साधक, साधना में दृढ़ता से आरूढ़ रहता है। जो वैराग्यवान साधक है वह जल्दी प्रगति करता है। उसका वेग अलग है, और साधारण साधकों के लिए तो यह पढ़ाई है। एक क्लास से दूसरी, दूसरी से तीसरी। गति के अनुसार समय लगता है। लेकिन प्रबल वैराग्य वाले साधक को, इन कोर्सों में कम समय लगता है। रैपिड (तीव्रता) में आ जाता है। सबसे आगे निकल जाता है। इसलिए वैराग्यरूप हनुमान की महिमा अलग है।

साधक को चाहिए कि न ज़्यादा खाय, न कम खाय, न बहुत ज़्यादा सोवे न बहुत कम सोवे। लोगों से सम्बंध कम से कम रखे, गम्भीर बने। इसके लिए यह जो बीच का

रास्ता है, अच्छा है। गौतम बुद्ध ने इसे मध्यम मार्ग कहा है। इसे गोल्डेनमीन या स्वर्णिम मध्य मार्ग माना गया है, बौद्धों में। गीता में भी यही बात कही गई है –

"युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।"

साधन के लिए नाम को लेकर, रूप को लेकर चलना है। नाम को श्वास में ढालो रूप का ध्यान करो। धीरे–धीरे अन्दर अंग–प्रत्यंग में जागृति आने लगेगी और हमें लगने लगेगा कि हम कुछ जानते हैं। हम कुछ अच्छे हो रहे हैं। ऐसा नियम से करने लगेंगे, तो धीरे–धीरे हमारा मन खाली होता जायेगा। आकाशवत होगा। अभी तक जो इस मन में संसारी चिंतवन भरे रहते थे, उनसे यह खाली हो जायेगा, तो इसमें वे तत्व आने लगेंगे, जिनसे हम आगे बढ़ जाएंगें। जिनसे हम राइज (उन्नत) हो जायेंगे। ऊपर उठ जायेंगे। जिन तत्वों से हमारा कल्याण होना है। जिन तत्वों से हमें वह चीज़ मिलती है, जो सबसे कीमती है। और अगर हमारे मन में बाहर की दुनिया के चिंतवन आते रहेंगे, तो हम इन सबसे वंचित रह जाएंगे। इसलिए मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। मन ही सब कुछ है अगर इसे बाहर लगाते रहेंगे, तो वहीं रस लेता रहेगा। अगर अन्दर ले आए, तो प्रगति होने लगेगी। उसमें मन लगने लगेगा। कुछ मिलेगा, तो और आगे बढ़ेगा। भजन में लगने पर, जब उसमें शान्ति मिलती है, अच्छा लगता है, रुचि बनती है। समझ आने लगती है। अलौकिकता झलकने लगती है। प्रगति होती है, तो मन को अच्छा लगने लगता है, और साधक आगे बढ़ने लगता है। और यदि मन, दुनिया की बातों में ही लगा रहा, तो हम कितना भी भजन करें, कितना भी ध्यान करें, कितना भी पढ़ लें, कितना भी बोलने वाले बन जाय, दुनिया में छा जायं, सम्राट बन जायं, इससे क्या होता है? ईश्वर के क्षेत्र में उसकी प्रगति नहीं होसकती। इसलिए इस बात को शुरू से ही पकड़ना चाहिये, कि हमारा मन उधर से मुड़े। हमें बारीकी से समझना चाहिये कि हमें कौन सी चीज़ पकड़ना है, क्या छोड़ना है? हमें समझना चाहिये कि हमारी शुरूआत कहां से हुई है? तो यह ऐसा विषय है, कि बड़ी समझदारी से चलना पड़ेगा। नहीं तो इस रास्ते में सिर टकरा–टकरा कर, परेशान हो जाएंगे। वापस हो जायेंगे। कुछ नहीं मिलेगा।

भगवान नाम की चीज़ ऐसी है, जिसे हम बदनाम नहीं कर सकते। यह भलाई–बुराई दुनियां की बातें हैं। भगवान में न अच्छाई पहुंचती है, न बुराई पहुंचती है, न निन्दा पहुंचती है, न स्तुति पहुंचती है, न दिन, न रात। वह इन सबसे परे है। और परे इसलिए है, कि यह सब संसार क्षेत्र की बातें है। और वह संसार क्षेत्र से परे की चीज है। इसलिए जब हम इसे छोड़कर, उसको पकड़ेंगे, तो वह पकड़ में आएगा। और अगर हम इसी में पड़े रहेंगे, तो उधर की गति नहीं हो पायेगी। इसलिए यह अच्छी तरह से समझ में आ जाना चाहिए, कि हमें क्या करना है। चार्ट बन जाना चाहिये। अन्दर से बाहर से, ऊपर से, नीचे से, अगल से, बगल से, पूरा समझ लेना चाहिये जाने वाले को, साधना करने वाले को।

अगर एकांगी होकर चलेगा, तो सफलता नहीं मिलेगी। यह स्थायी विचार होता है। अगर हममें क्षमता आ गई है, तो सार्वभैमिकता आनी चाहिये। अगर सार्वभौमिकता नहीं आई है, तो तुम वहां पहुंच नहीं सकते हो। वहां अच्छा-बुरा, ऊँचा-नीचा, यह कुछ नहीं रह जाता। इसलिए साधक को इन सबसे ऊपर उठकर, मन की एकतानता लानी चाहिये। तीव्र वैराग्य के द्वारा उठ सकते हैं। और पहुंच सकते हैं।

साधक को यह देखना है, कि मन को किस तरह से कन्ट्रोल किया जाय? इसके लिए सबसे पहले उसे देखना चाहिए, कि क्या कोई आदमी ऐसा है, जिसने अपने मन पर कंट्रोल किया है? अपने शरीर को, विषयों से बचाया है। इन्द्रियों को विषयों से बचाया है। अगर ऐसा कोई दिखाई पड़ जाय, तो उससे लिपट पड़ना चाहिए। फिर उसे नहीं छोड़ना चाहिए। वही बताएगा रास्ता, जिसने देखा होगा। दूसरा कोई नहीं बता सकता, अपने से यह काम नहीं होता। दीपक जलता है, लेकिन उसके नीचे अंधेरा रहता है। एक दूसरा दीपक जला दिया, तो अंधेरा मिट जायेगा। तो अब एक गाइड (मार्गदर्शक) की जरूरत है। एक मास्टर चाहिए। एक गुरु, जो मार्गदर्शन करे। जो जानकारी हम चाहते हैं, वह हमें बता दे। सबसे पहला जो साधन है, वह यह है। तो शरीर को मन के सहित, गुरु के चरणों में समर्पित कर दे। तुम्हें अगर समझ में आता है, कि अमुक आदमी में यह क्षमता है, जो तुम्हें मार्गदर्शन कर सकता है, तो पूरे मन से, सच्चे भाव से समर्पण कर देना चाहिए। फिर तुम्हारे अन्तःकरण को टटोलकर गुरु स्वीकार कर लेगा। अगर स्वीकार भी न करे, और तुमने सही विचार और पूरे मन से, सही भाव से समर्पण किया है, और उसे पता चल जायेगा, कि अमुक आदमी हमारे प्रति समर्पित है, तो साधन में तुम्हें गति मिल जायेगी। उसका लाभ मिल जायेगा। इतनी यह प्रक्रिया है। फिर समर्पण के बाद, तुम्हारे लिए ठीक क्या है, क्या कमी है, कहाँ क्या खराबी है, यह खराबी पहले से है, या नई पैदा हो रही है, इससे बचने के लिए यह करना है, यह सब वह बता सकता है। वह तभी बताएगा जब तुम उसे मन, वचन और अन्तःकरण से समर्पित हो जाओ। और अगर समर्पित नहीं हुए, तो चाहे उसके पास ज़िंदगी बिता दो, तो न तुम उसे टच (स्पर्श) कर सकोगे, न उससे तुम्हें कुछ मिलेगा। न कुछ तुम्हें देगा। और अगर आत्मा से, सच्चे भाव से समर्पण है, तो तुम्हारे आत्मिक लाभ के लिए, कहाँ-क्या करना है- सब करेगा।तुम्हें राइज़ करता जायगा। तुम्हारे कल्याण के लिए समय-समय पर, जहाँ जैसी जरूरत होगी, सब काम करेगा। अन्दर से बताएगा, बाहर से बताएगा। शान्ति देगा, अनन्त फल देगा। और अगर मनमानी चलोगे अन्दर कुछ, बाहर कुछ, तो फिर यह तुम्हारे लिए ज़हर हो जायेगा और तुमको अपने से अलग कर देगा।

'जलपय सरिस विकाय, देखहु प्रीति की रीति भलि।
विलग होय रस जाय, कपट खटाई परत पुनि।।'

कपट-खटाई के पड़ते ही बिलगाव हो जाता है। और, गुरु के बचनों में गुंजाइश। उसने कहा- इधर जाओ, और तुमने कहा अभी नहीं, फिर जाएंगे। बस खतम। गुरु जो आदेश करें उसमें फिर गुंजाइश न ढूंढे। साधक का परम धर्म है कि गुरु आज्ञा का अक्षरशः पालन करे। आज्ञासम न सुसाहिब सेवा। इसलिए ऐसे संस्कारवान साधक मिलते नहीं हैं- गुरु तो परखे बैठे रहते हैं। और एक तो आजकल का प्रचलन बड़ा खराब हो गया है। साधना किसी को करना नहीं है। बस जीवन-यापन करना है। पड़े हैं, जीवन-यापन कर रहे हैं। तो ऐसे कहीं कुछ मिलता है क्या? कहां लिखा है, कोई बतायेगा? कहां ऐसा लिखा है, कि ऐसे पड़े हैं, सत्संग सुनते रहें और साधन भजन कुछ करें नहीं। ऐसे नहीं होता है।

हाँ, गुरु भी सही क्षमतावान होना चाहिए। आजकल भारत में तो ऐसे भी गुरु हो रहे हैं, जो जाति के आधार पर अपने शिष्य बनाते हैं। साधन में जाति-पांति का क्या मतलब है? हाँ इसमें एक बात कही जा सकती है, कि साधन की भूमिकाएं हैं, कक्षाएं हैं। लेकिन यहां तो श्रेणी के हिसाब से ही छटनी होती है। तुम्हारे यहां समाज में भी, जो फर्स्ट क्लास वाला है, वह शुरु से लेकर आखीर तक फर्स्ट क्लास रहा होगा, तभी तो आई.ए.एस. हुआ। जो शुरु से थर्ड क्लास है, वह बी.ए. में फर्स्ट क्लास कैसे आएगा? वहां तक पढ़ाई भी करेगा या नहीं। इसलिए श्रेणी की छंटनी होनी चाहिए। फर्स्ट वाले आई.ए.एस. सेकंड वाले पी.सी.एस. या कुछ और। तो इसके बगैर काम नहीं चलता है। श्रेणी तो बनानी ही पड़ेगी। जैसे किसान एक बैल खरीदकर ले जाता है, तो वह हल में ठीक से चलता है। दाएं भी चलता है, बाएं भी चलता है। कोई नया नटवा होता है,वह ठीक से नहीं चलता। तो उसे सिखाना पड़ता है। सिखाने में कमी रह गयी, तो फिर वह नटवा ज़िंदगी भर परेशान करेगा। इस तरीके से अगर शुरु से ही अच्छी ट्रेनिंग मिल गई साधक को, तो वह बहुत अच्छा है साधक के लिए और हम सबके लिए। जो विद्यार्थी शुरु से कमजोर रहता है, आगे भी उसके सामने दिक्कतें आती हैं-न समझ पाने की दिक्कत, आलस्य की दिक्कत। विषय-वासना में उलझेगा। तमाम तरह की दिक्कतें आती हैं। और जो छात्र शुरु से ही फर्स्ट क्लास है, 80-90 प्रतिशत वाला है, उसमें वेग रहता है। आलस्य कम रहेगा। उसे ऐयासी से मतलब नहीं रहेगा। पढ़ाई मे मन लगेगा। उसके सामने मित्रों की दिक्कतें कम रहती हैं। इस तरह से वह निकल जाता है। इसी तरीके से यह समझना पड़ता है। साधक को परखना पड़ता है। उसे साधना की सही लाइन में लाना पड़ता है।

आजकल साधना के नाम पर कई धार्मिक-सम्प्रदाय बन गये हैं। उनके सबके अपने नियम हैं, सिद्धान्त हैं। लेकिन हम कहते हैं, कि साधना तो करनी ही होगी-पढ़ाई तो करनी पड़ेगी। चलना तो पड़ेगा। पहुंचना तो होगा या नहीं? मंजिल को पाने के लिए रास्ता तय करना पड़ेगा। इसलिए साधनाकी प्रक्रिया एक ही है। सिद्धान्त एक ही है, लेकिन सही जानकारी न मिल पाने से, 90 प्रतिशत लोग जो ईश्वरोन्मुख हैं, उन्हें ईश्वर के सम्बंध में और साधन क्रिया के सम्बंध में सही ज्ञान ही नहीं हो पाता। इसलिए 100 में एक या

आधा पैसे साधना कर पाते हैं लोग। बाकी 99 से ज़्यादा लोग आधे अधूरे ही रह जाते हैं। आज कल की कंडीशन (दशा) यही है। कहते हैं, ईश्वर के यहां आनंद है। आनंद कहां है वहां? वहां तो कुछ नहीं है। न सुख है न दुख है। न ज्ञान है न अज्ञान है, न क्रोध है न काम। न क्षमा है न दया। वहां कुछ भी नहीं है। जो, है से परे है, उसमें ये सब कैसे हो सकता है? वह सबसे परे है। इस तरह से भगवान एक ऐसा विषय है, जिसके संबंध में कहते-सुनते नहीं बनता। एक में एक को कैसे पकड़ा जा सकता है? वह कुछ है नहीं। वह तो है से परे है। आंनद की बात तो ऐसी है, कि जब मन के सारे चिंतवन समाप्त हो जाते हैं, वह आकाशवत होने लगता है, तो अच्छा लगता है। और जब हो गए, तो फिर कुछ कहते-बताते नहीं बनता। एक में एक को कैसे देखा जा सकता है? एक में एक को कैसे कहा जा सकता है? एक में एक से बोलते नहीं बनता। एक में एक से ज्ञान नहीं बनता। एक से एक में काम नहीं बनता। एक से एक में क्रोध नहीं बनता। ऐसा वह आत्मा का रूप है- एकमेवाद्वितीयम्। वह सबसे बड़ा और सबसे सूक्ष्म तत्व है, जो महान शक्ति है। वह सब में है, सबसे अलग भी है। वह सावयव भी है, निरवयव भी है। हम शरीर में हैं, तो इसका ज्ञान रहेगा। आत्मा में आत्मा का ज्ञान होगा। परमात्मा को सावयव और निरवयव दोनों का ज्ञान रहता है। वह जब चाहे तब सावयव, और जब चाहे तब निरवयव हो सकता है। और इन दोनों से परे भी है। ईश्वर कोई ऐसी चीज़ नहीं है, कि उसे हम पकड़ लें, और मुट्ठी में बंद करके ले आएं, और फिर सबके सामने खोलें, कि यह देखो हमने ईश्वर को प्राप्त कर लिया है। इसलिए- जैसे को तैसा। अब हमें इस तरह से बताना पड़ेगा।

इसलिए साधना का काम, तेज गति से ही सफल होता है। धीमी गति से, जो रोकने वाली बाधाएं हैं, ये एक्शन (क्रिया) रिएक्शन (प्रतिक्रिया) में आ जाती हैं। मुश्किल में पड़ जाता है साधक। राम जब रावण को वाण मारते थे, तो उसका एक बूंद खून गिरता था, तो हजार रावण उससे पैदा हो जाते थे। इसका मतलब यह हुआ, कि जब कोई एक संकल्प किसी बुराई का मन में उठता है, तो उसमें स्पंदन होता है; और मन में हज़ार बार घूम-घूम कर, वही संकल्प आते रहते हैं। और तीव्रगति वाला साधक, उस संकल्प को एक बार में ही खत्म कर देगा और आगे बढ़ जायेगा। वह पहले से ही ऐसा मूड बनाकर रखता है, कि एक झटके में एक बाधा को पार कर लेगा और निकल जायेगा। ऐसी तीव्र गति के लिए जो बात आवश्यक है, वह है तीव्र वैराग्य। और वैराग्य जो है, वह है राग का त्याग, त्याग का त्याग। साधक मे अनुराग का होना बहुत जरूरी है। भगवान से प्रेम के साथ प्रार्थना की जाय। कि हे! भगवान मुझे अपनाया जाय। मेरे अन्दर की कमियों को दूर किया जाय। आप मेरे ऊपर हावी (प्रभावी) हो जायं। मुझे वह तरीका बताया जाय, जिससे मेरा कल्याण हो जाय। ऐसे जब निष्कपट भाव से प्रार्थना की जाती है, तो गुरु की अनुकूलता (कृपा) मिलती है। और धीमी गति का साधक भी निकल सकता है। ऐसे

उदाहरण देखे गए हैं। राजनीति में आए हैं, वैज्ञानिकों में आए हैं, महात्मापने में आए हैं। हमारे यहां कहा जाता है कि अखाड़े का लतमार, एक दिन पहलवान बन जाता है। निरा रद्दी साधक, आगे निकल जाते हैं- हाँ लगा रहे, छोड़ न बैठे। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है। तो हम यह नहीं कहते हैं, कि वे नहींकर सकते, लेकिन ऐसे लोगों का परसेंटेज कम होता है। कोई-कोई धीमी गति वाले भी निकल जाते हैं।

यह साधना का विषय इतना बारीक है कि अनेक प्रश्न सामने आते हैं- ईश्वर क्या है? माया क्या है? आत्मा क्या है? जीव क्या है? हम क्या हैं? जीव कहां रहता है? हम कहां रहते हैं? कहां पहुंचना है? इन सब की जांच हो जाय। फिर साधना कहां से शुरू करें, कहां-क्या करना है, यह सब चार्ट बन जाय। और फिर शुरू करें। अब यह सब जानना-समझना, और उस पर स्टेप बाई स्टेप (चरणबद्ध तरीके से) आगे बढ़ते जाना, यह साधक का काम है। अगर तुम्हारे अन्दर क्षमता नहीं है, तो मास्टर क्या कर पाएगा। मास्टर कुछ नहीं कर पाएगा, और लड़का फेल हो जायेगा। और जो पास होने वाला है, अच्छा विद्यार्थी है, वह नहीं मानेगा। बार-बार पढ़ाई की बात पूछेगा, और पास होकर मानेगा। मास्टर चाहे जो करे। इसलिए यह समझने की बात है, प्रगति की बात है। बुद्धि होनी चाहिए, मेमोरी (स्मृति) होनी चाहिए। लगन और उत्साह होना चाहिए, विश्वास होना चाहिए और लक्ष्य को पाने के लिए सब कुछ दांव पर लगा देने का हौसला होना चाहिए। और अगर यह नहीं है, तो हजारों मठ मन्दिरों में कथा-कीर्तन महात्मा लोग कर-करा रहे हैं। शहरों में जगह-जगह रोज हो रहा है। हजारों-लाखों लोग सुनते हैं, समझते हैं, और वहीं का वहीं झाड-फूंक कर चले जाते हैं और फिर वही रोज का धन्धा-व्यापार करते हैं। कितने ही लोग रोज नियम से शाम सुबह सुनते हैं, फिर अपना-अपना काम व्यापार करते हैं। फिर सुनने जाते हैं। एक प्रकार से अभ्यास है शरीर स्तर का। पहले तो साधन की बात हर जगह मिलती नहीं। मिल भी जाय तो कोई करता नहीं। बस सुनते जा रहे हैं। तो क्या है? पहले नहीं सुनते थे, तो क्या कर लेते रहे- अब सुनते हैं तो क्या कर लेते हैं। ऐसे में लोगों को कई तरह के भटकाव भी हो जाते हैं। कोई एक हजार गुरिया का माला जप रहा है- गले में झोरी बांधे। कोई और किसी बाहर की क्रियाओं में उलझ गया। साधना कैसे कहां होती है, कुछ पता ही नहीं लगता है। बस साधना के नाम पर कुछ कर रहे हैं। उसी में अटके रह जाते हैं जिन्दगी भर। ऐसी अनेक बाधाएं हैं। तो साधना का विषय बारीक विषय है। और जो विषय जितना ज्यादा बारीक होता है, उसे समझने करने में उतनी ही अधिक कठिनाईयां होती हैं। सबकी समझ में नहीं आता। इसलिए जैसा विषय हो, वैसा ही समझाने वाला और समझने वाला भी होना चाहिए। अब देखो एक मेडिकल वाला विद्यार्थी सी.ए. नहीं कर सकता है, सी.ए. वाला मेडिकल नहीं कर सकता। साइंस वाला आर्ट नहीं कर सकता, आर्ट वाला साइंस नहीं कर सकता। इसलिए सोचने की बात है, कि अपनी क्षमता-पात्रता के अनुसार साधना में लगें। भगवान से भक्ति की याचना

करें। भगवान हमें अर्थ नहीं चाहिए, कुछ और नहीं चाहिए, बस आपकी भक्ति ही चाहिए। जैसे गोस्वामी जी ने लिखा है-

अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान।

जनम-जनम रति राम पद, यह वरदान न आन।।

जनम-जनम में भक्ति मिलती जायेगी, तो भगवान भी पकड़ में आ सकता है। भक्ति मिलती रहेगी, तो कभी न कभी सायुज्य मुक्ति भी मिल सकती है। सारूप्य मुक्ति भी मिल सकती है। इसलिए भक्ति ही ठीक है। और अगर तुम भगवान से कहो-भगवान हमें सायुज्य मुक्ति मिले। सायुज्य मुक्ति मिल जाय।तो यह एम (लक्ष्य) बन गया ? डिमांड (मांग) हो गई? डिमांड होने पर भगवान कहता है, अच्छा ठीक है। इस तरह मांग तो पूरी हो गयी लेकिन भगवान दूर हो गये। इच्छा होना, डिमांड होना, ठीक नहीं है इस रास्ते में। यहां तो अनपेक्ष होना ही ठीक है। भगवान से भगवान की भक्ति या प्रेम मांगना ही ठीक है। यह समझने की चीज़ है। और समझ में आ जाय, तो साधना में लगने की बात है। और इसमें क्या रखा है-यह तो साँपों की लड़ाई में, जीभों की लपालप। बस बात करते रहे-

'बात-बात में बात है, बात-बात में बात।

ज्यों केले के पात में, पात-पात में पात।।'

इसमें कुछ नहीं है। यह तो बातों का जाल है। यह बातों का बतंगड़ है। समझना चाहिए न? अब देखो, यह नाभि कमल है। यहां पोल है, आकाश है। श्वास से हवा आती है, उससे घर्षण या टकराहट होती है। यह इनर्जी बन जाती है। शब्द का संकल्प तैयार होगा। यह संकल्प रूपी बीज आगे हृदय में आकर अंकुरित हो गया। कल्पना का रूप ले लिया। आगे और चक्रों में उठकर, कंठ में, और फिर वाणी में आकर, शब्द (भाषा) के रूप में मुखरित हो गया। इसी शब्द को बाहर कार्य रूप में परिणत करते हैं, और यह चक्र चलता रहता है। जो भी इच्छा अन्दर होती है, पहले वाणी के रूप में व्यक्त होती है, फिर कर्म का रूप लेती है। तो जब तक इच्छाएं रहेंगी, यह चक्र चलता रहेगा। इच्छा रहित हो जाने से, यह सर्कुलेशन रुक जाता है। इसलिए पहली बात है कि इच्छाओं का दमन किया जाय। क्योंकि इसी से संसार है। इच्छइ काया, इच्छइ माया, इच्छइ जग, उपजाया। इसलिए इच्छाओं का दमन किया जाय। इच्छा का दमन कैसे होगा? जब हमारा मन, हमारा नहीं होगा। तो दे क्यों नहीं देते किसी को इसे? समर्पण क्यों नहीं कर देते कहीं? जब हम, हममें रह ही नहीं जाएंगे, इच्छाएं कहां रहेंगी? इसलिए यह काम तो अपने से करने का है। बिना अपने किए, दूसरा यह काम कैसे करेगा? समर्पण के बाद, हमारा हममें रह नहीं गया। अब हम कह सकते हैं, कि हमारा हममें है ही नहीं। तो इच्छाओं से बच जाओगे। इसके बगैर काम नहीं चलेगा। समर्पण के बाद, साधक के संरक्षण का काम गुरु के पास

आ गया। अब जो नहीं करते या नहीं कर पाते, उन्हें तो गरुबाबा डंडा उठाएगा ही। जैसे कोई बहुत अच्छा स्कूल है, तो अगर उसमें फर्स्ट क्लास लड़के नहीं लिए जायेंगे, और अच्छा रिजल्ट नहीं दिया जायगा तो वह कैसे चलेगा? कोई अयोग्य होकर वहां से निकलेगा, तो क्या रह जायेगी स्कूल की क्रेडिट (प्रतिष्ठा)? उस स्कूल की कैसे बनी रह जायेगी अच्छी कंडीशन? इसलिए अगर नहीं डांटा जाएगा, नहीं सभांला जायेगा, नहीं अनुशासन में रखा जायेगा, तो काम कैसे चलेगा? इससे तो अच्छा है, कि जो नहीं चल पा रहा वह हट जाय इस रास्ते से। जो त्याग नहीं कर सकता, अनुराग नहीं कर सकता, समर्पण नहीं कर सकता, वह साधक नहीं कहा जायेगा। यहां तो ऐसा है कि,

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।
जो घर फूंकै आपनो, चलै हमारे साथ।।

सीधी सी बात है। यहां न लल्लो है न चप्पो। न लिहाज है न संकोच है। न मुरउवत है, न कोई मतलब है। यह हम इसलिए बतला रहे हैं, कि जिसमें गुजांइश है वह कर सकता है। अनेक छोटे-मोटेसाधक होते हैं, जो अपनी कमियां ठीक कर सकते हैं, सुधार कर सकते हैं। एडजस्ट कर सकते हैं। साधना के रास्ते में लग सकते हैं।

साधक को चाहिए, कि नियम से भजन-ध्यान करे। नाम जपे। श्वासा में जपे। पश्यंती में जपे। ध्यान करे। उसमें समय ज़्यादा से ज़्यादा लगावे। अन्तर्मुख रहे। अपनी प्रगति का निरीक्षण भी करे, कि हां, आज भजन में मन अच्छा लगा। आज ध्यान में भगवान का रूप अच्छा पकड़ में आया। भगवान सही जगह हृदय में बैठे। मुझे अपने पास बैठाया। रोज-रोज प्रगति होनी चाहिए। जब ध्यान-साधन अच्छा होगा, तो उत्साह रहेगा, अच्छा प्रतीत होगा। और जिस दिन भजन ध्यान सही नहीं होगा, मन में खिन्नता रहेगी। तब भगवान से विनती करे, कि हे भगवान मुझसे कौन सी गलती हुई है कि मेरी प्रगति रुक गयी। मुझ पर कृपा की जाय। तो धीरे-धीरे सब ठीक हो जाता है।

लय, लागत-लागत लागै।।
भय, भागत-भागत भागै।।

साधना के लिए ज़रूरी नहीं है, कि कोई बहुत पढ़ा लिखा हो। बिना पढे-लिखे हों, वे भी इसमें डिग्री पा सकते हैं। विषय-विशेषज्ञ हो सकते हैं। जो करने में तत्पर हो जाता है, उसे सफलता मिल जाती है। सभी महात्माओं ने इस बात को माना है। लेकिन मुख्य बात है, इसमें लगने की। सब कुछ हो सकता है। क्या नहीं हो सकता है? कोई करे तो लगन के साथ।

अब जैसे किसी साधक से झाडू लगाने के लिए कहा गया। उसे पसन्द नहीं आया। इधर-उधर कर दिया। यह गलत तरीका है। उसे तो यह सोचना चाहिए, कि मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ कि मुझे झाडू लगाने का मौका मिला। ऐसा क्यों नहीं सोचता? साधना का

एक क्रम होता है। उसमें साधक को ढलना होता है। पहले शरीर के स्तर पर सेवा के द्वारा। फिर सूक्ष्म शरीर के स्तर में मन के द्वारा। मन से भजन-ध्यान के द्वारा, विजातीय चिन्तन और संकल्प-विकल्पों को शान्त करके, फिर कारण में आ जाता है। तब सजातीय पार्टी के द्वारा विजातीय पार्टी को खतम करना होता है। यह हृदय कुरुक्षेत्र है। शरीर रथ है। इन्द्रियां घोड़े हैं। मन लगाम है। बुद्धि सारथी है। अनुरागी साधक-अर्जुन, रथी है। कृष्ण आत्मा है। विजातीय कौरवों की सेना, सजातीय पाण्डवों की सेना-दोनों के बीच में वह खड़ा है। सजातीय ज्ञान की पार्टी, देवताओं की पार्टी। और विजातीय मोह, अज्ञान की पार्टी, राक्षसों की पार्टी। अब जब राक्षसों की पार्टी खतम हो गयी, तो देवता क्या करेंगे? अब देखो यह दुनिया दो से बनी है। दो आदमी, दो मकान यह दो नहीं। जैसे-रात और दिन, सुख-दुख, अच्छा-बुरा, ज्ञान-अज्ञान। ऐसे दो, जो एक दूसरे के अपोजिट हों। इनसे बनी है दुनिया। तो पहले बुराई खतम करने के लिए अच्छाई को लिया गया। जब बुराई को जीत कर भलाई रह गयी। तो अब भलाई का भलाई में ज्ञान नहीं हो सकता। इसको अन्योन्याश्रय दोष कहते हैं। इसको अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। विजातीय कौरव दल हार गया, सजातीय पाण्डवों का दल जीत गया। तो अब हम पाण्डवों का क्या करें? पूजा करें, कि क्या करें? ज्ञान से अज्ञान को जीत लिया। अज्ञान खतम हो गया। ज्ञान रह गया। अब बिना अज्ञान के, ज्ञान में ज्ञान का ज्ञान नहीं हो सकता। यह प्राकृतिक नियम है। आटोमैटिक नियम है। एक का एक में ज्ञान नहींहोता। यह अज्ञान ही है, जो हमें ज्ञान का ज्ञान करा देता है। यह रात है, जो हमें दिन का ज्ञान करा देती है। अगर रात न हो, रात हमारे दिमाग से निकल जाय, तो क्या बगैर रात के दिन का ज्ञान होगा? इसलिए जब अज्ञान खतम हो गया, और ज्ञान का जब हम आनन्द लेना चाहेगें, उसे अपने पास रखना चाहेंगे, तो अज्ञान फिर खड़ा हो जायेगा। यह अन्योन्याश्रय दोष है। यह सबसे बड़ा दोष है। इससे मुक्ति का मार्ग रुक जाता है। इस दोष से बचना चाहिये। बचने की युक्ति हम बताते हैं। जब ज्ञान ने अज्ञान को समाप्त कर दिया, तो फिर ज्ञान का आलिंगन न करो। उसके सामने हाथ जोड़कर खड़े हो जाओ, और कहो, कि भाई अब मेरे शत्रु जो अज्ञान की पार्टी थी, वह समाप्त हो गयी। अब तुम भी, अपनी पार्टी के साथ, उसी के रास्ते बिदा हो जाओ, इस प्रकार ज्ञान समूह का भी त्याग कर दे।

त्यागहिं कर्म शुभाशुभ दायक।
भजहिं मोहिं सुर, नर, मुनि
नायक।।

\- - - -

सुनहु तात मायाकृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिए, देखिय सो अविवेक।।

तो दोनों का त्याग करना है। इसके बाद साधक साधना नहीं करता, निकल जाता है। सर्कुलेशन से बाहर हो जाता है। सुषुप्ति के बाद तुर्या, और उसके भी आगे।

ज्ञान आया, अज्ञान आया, सत्य आया, असत्य आया, दिन आया, रात आई यह दोनों चक्का चलते रहते हैं। कबीर ने कहा है कि

'चलती चक्की देखकर, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय।।'

इसी में आदमी पिसता रहता है। अब जब ज्ञान से अज्ञान खतम हुआ, ज्ञान रह गया। तो एक चक्का खतम होने से चक्की जाम हो जायेगी। दोनों खतम हो जायें, तो चक्की से मुक्ति मिल जाती है। तो इन दोनों को त्याग कर साधक इस सर्कुलेशन से बाहर निकल जाता है। ऊपर उठ जाता है। हायर लेवल प्राप्त कर लेता है, यह कल्याण का प्रशस्त मार्ग है। यही रास्ता है। और जो सर्कुलेशन में आता है, वह अलग है। जैसे तुमने साधना की। घोर तपस्या करके फिर डिमांड कर ली। जो ऐश्वर्य मिले, फिर भोग किया, और सर्कुलेशन में आ गये। फिर किया, फिर शान्ति मिली, उसका उपभोग किया, फिर आ गये। तो यह सर्कुलेशन चलता रहेगा। खतम नहीं होगा। इसलिए चाहना कुछ भी नहीं है। साधन भजन करना है। भजन का अर्थ है– भज न। मन विषयों में भागे न। भक्ति का मतलब है, भगवान से विभक्ति या अलगाव न हो। या यों कहें कि भग इति स भक्ति। भग के रास्ते से जो आवागमन है, उसकी इति हो जाय। आवागमन समाप्त हो जाय, वह भक्ति है। तो यह बिना विजातीय को खतम किये, और फिर सजातीय–विजातीय दोनों का त्याग करके इस सर्कुलेशन से बाहर हुये बगैर, नहीं होता। यही मुक्ति का मार्ग है। कल्याण का मार्ग है। इसके आगे तुर्या और तुर्यातीत की अवस्था, साधक प्राप्त करलेता है। यह केवल बात ही बात नहीं है। साधक का इस अवस्था में, कम्युनिकेशन होता है। इसमें खाली बोध भर नहीं होता, साधक को कुछ मिलता भी है। वह अपने अन्दर महसूस करता है, कि मैं किससे बात कर रहा हूँ। मेरे पास क्या चीज़ है? मैं क्या हूँ? कैसा हूँ, इसका बोध होता है। साँपों की लड़ाई में, खाली जीभों की लपालप ही नहीं है वहां। वहां तो चमत्कार घटित होते हैं–

यथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल बन, भूतल भूरि निधान।।

0 0

जो नहि देखा नहि सुना, जो मनहू न समाय।
सेा सब मै तहं देखेउं, बरनि कवन विधि जाय।।

तो इस प्रकार साधक की यह प्रकृति हो जाती है। फिर इसके बाद साधक की क्रियाएं नहीं होतीं, कि यह करो, वह साधन करो। इस अवस्था में पहुंच कर, यह पूछने को नहीं रह जाता, कि इसके बाद क्या करना होगा? कोई एम.ए. पास करके, क्या प्राइमरी में एडमिशन (प्रवेश) लेने आता है कभी? कि फिर से प्राइमरी करें, हाईस्कूल करें। तो इस तरह से,अच्छे साधक, साधना के सही तरीके से, महात्माओं की युक्ति से, इस ज्ञान को भी, सच्चाई को भी, मूल चीज़ को भी त्याग करके, निवृत्ति को ग्रहण कर लेते हैं।

घरों में देखते हो कि जब कोई बुड़ढ़ा आदमी जर्जर हो जाता है, मरने की बात उसके मन में छा जाती है,तो चिल्लाता रहता है। मेरे लड़कों को बुला दो एक बार देख लूं। नाती को बुला दो उसका मुख एक बार और देख लूं। पड़े-पड़े ऐसे चिल्लाता है। जिन्दगी भर उसने लडकों को देखा, नाती को देखा,लेकिन उसे संतोष नहीं लगता। उन्हीं में आसक्त रहता है। इसी प्रकार हमें अभ्यास बनाना है कि हम भगवान को ही देखना चाहें। हमारा बेटा है तो भगवान है, हमारा बाप है तो भगवान है, हमारा धन है तो भगवान है। हम उसी को रोएं, उसी के लिए गाएं। वही मुक्ति है, वही भुक्ति है। वही हमारा सब कुछ है। तो क्या मतलब है-वह रखेगा तो रहेंगे, मारेगा तो मरेंगे। मरे ही तो हैं। अभी हम इस संसार में पैदा हो गये हैं,संसार में जी रहे हैं और भगवान के यहाँ मर गये हैं, भगवान से मतलब नहीं है। अब हम इसे उल्टा कर लें। संसार की तरफ से मर जायं। संसार से मतलब न रहे भगवान से मतलब रहे। इस तरह से हम भगवान के यहाँ पैदा हो जाएंगे-संसार से मर जाएंगे। ऐसे उल्टा कर लें तो यह है मरने से पहले मरना, मरना नहीं है, मन को ट्रांसफार्म कर देना है। तो फिर मन को ताकत मिलेगी, दृढ़ता आएगी। इस प्रकार बोध लगाना चाहिए। तब ठीक रहता है। अन्यथा तमाम चीजों से हमारा प्रेम रहता है,उन सबके लिए रोते रहना ठीक नहीं है। वस्तु तो हमसे अलग है भिन्न है। वह हमारी चीज नहीं है। जो हमारी चीज है,वह है ईश्वर- जो हमारे अन्दर और सबके अन्दर बैठा हुआ है। इस निष्कर्ष को हमने ले लिया है, अब उसे नहीं छोड़ना है। रोएंगे तो उसी को रोएंगे, मरेंगे तो उसी को मरेंगे। जिएंगे तो उसी को जिएंगे। ऐसा अभ्यास बनाना चाहिए किसी भी उपाय से। वह साधक ठीक रहता है। जिसका ऐसा निश्चय बन जाता है। ऐसे महात्मा जीवित समाधि ले लेते हैं। जीवित समाधि का मतलब है किजीवित हैं लेकिन संसार से मतलब नहीं रखते। संसार की तरफ से आंख मूंद लेते हैं, ईश्वर को ही देखते हैं।

संसार के पदार्थो से आच्छादित होकर,उनसे प्रेम करके यह जीवात्मा पतित हो जाती है। इसलिए ऐसा अभ्यास करना चाहिए कि संसार के पदार्थों के बजाय परमात्मा में प्रेम हो। संसार से हम सिखावन ले सकते हैं। यह उसका सदुपयोग हो सकता है। एक समय जब हम अनसूया में थे, हम और हमारे गुरु महाराज थे। तो उस समय चित्रकूट में एक उदासी महात्मा थे, सिरसावन में। उनका शरीर छूट गया, और बड़े भद्दे ढ़ंग से शरीर छूटा।

वह महाराज के बड़े प्रेमी थे। बड़े अच्छे संत थे। जब यह खबर मिली, तो महाराज खूब हंसे। हमने महाराज से पूछा कि आपके प्रेमी महात्मा थे मर गए और आप इस तरह से हंस क्यों रहे हैं? महाराज बोले–तुम नहीं जानते। हम हँस इसलिए रहे हैं, कि बाबा जी तो मर ही गए, मगर हमें एक सिखावन मिल गयी कि हम ऐसी खराबी से बचकर रहेंगे। पथभ्रष्ट होने से बचे रहेंगे। इसलिए यह संसार कुछ सिखावन देता है। लेकिन कोई लेता नहीं, सिखावन संत लेते हैं सिखावन।

पुराणों के अनुसार यहीं अघमर्षण में यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद हुआ था। जब यक्ष ने युधिष्ठिर से प्रश्न किया कि इस दुनिया में आश्चर्य क्या है? तो युधिष्ठिर ने बताया था, कि लोग रोज मरते हैं, लेकिन जो बाकी लोग हैं,वे इस दुनिया में बने ही रहना चाहते हैं। उन्हें अपने मरने का ख्याल नहीं आता, यही महान आश्चर्य है। हर जगह रोज लोग मरते हैं। लोग उन्हे फूंक–जलाकर जल्दी घर आते हैं और दही भात मजे से खाते हैं। उन्हें अपने लड़के–बच्चे देखने की जल्दी पड़ी रहती है। जबकि देखने को है क्या? सब मरे ही तो हैं। आज नहीं तो कल। लेकिन इस पर कोई गौर नहीं करता। सिखावन नहीं लेता। कोई–कोई होता है जो सिखावन लेता है। गौतम बुद्ध को इसी तरह से वैराग्य हुआ। दुखियों को देखा, लोगों को मरते देखा और निकल गये–आज लोग उन्हें भगवान मानते हैं। इसलिए ईश्वर की ओर जिसे चलना है, उसे संसार से–इस माया से मुंह फेर लेना पड़ेगा।

यह संसार झूठा है। कहा गया है–

मन तू झूठे जग में आया।

तो हम झूठे में आकर फँस गए हैं। झूठा क्यों है? क्योंकि यह काल करके बाधित है, देश करके बाधित है। आज जो है, कल नहीं रहेगा। अभी तुम जिस मकान को कहते हो कि यह मेरा है, कल तुम मर जाओगे, तो क्या यह जायेगा तुम्हारे साथ? सत्य वह है जो सदैव साथ रहे। तुम्हारे साथ सदा कौन रहता है? जो यह बोल रहा है। यह आवाज कहाँ से आ रही है? नाभि से नभ से। आत्मा का रूप आकाशवत होता है। आकाश से बारीक महत्तत्व है फिर प्रकृति और उससे भी बारीक आत्मा है। वह सत्य है, वह भगवान है, वह सदैव है, सर्वत्र है, व्यापक है, एकरस है। वह परमात्मा का सही स्वरूप है। यह संसार और इसका आकर्षण बनावटी है, झूठा है। यह उसी तरह है, जैसे कोई स्वप्न में देखता है कि राजा हो गया, फिर देखता है कि गरीब हो गया या सर्प काट लिया, तो रोता है, अथवा लाभ मिल गया तो खुश होता है। यही सब तो स्वप्न में देखा जाता है। और जाग गये तो कुछ नहीं।

'सपने होय भिखारि नृप, रंक नाकपति होय।
जागे हानि न लाभ कछु, तिमि प्रपंच जिय जोय।।

ऐसा यह संसार है। अवस्था का भेद है। वह स्वप्न अवस्था का संसार है। यह जाग्रत अवस्था का संसार है। स्वप्न का संसार अलग है,जाग्रत का अलग है। वह हमारे अन्दर का है–सूक्ष्म है। यह बाहर है–स्थूल है। और कारण शरीर में चेतन का प्रतिबिम्ब है, वह इनसे अलग है–इन्हें देखने वाला है। तो यह सब महात्मा लोगों के अनुसंधान हुए हैं। उन्होंने समझा है, जाना है और कहा भी है। करके देखा तब कहा। और आजकल की यह जो भाषणबाजी है, इससे सही बात बहुत दूर छूट जाती है। यह जो लच्छेदार भाषा बोलकर, हुजूम इकट्ठा करके लोग सत्संग के नाम पर व्यवसाय करते हैं–इससे यह विषय अलग है। यह यथार्थ विषय है, और जो ये व्याख्यान लोगों को रिझाने के लिए होते हैं, वह अलग हैं। रोचक,भयानक और यथार्थ– ये तीन शैली हैं। भयानक में बताया जायगा कि बुरा काम करोगे तो नरक हो जायगा, पाप लगेगा। इस तरह भय दिखाना यह एक शैली है। एक रोचक शैली है जिसमें लतीफे, कहानियां, नाचना, गाना, बजाना सब आ जाता है। धर्म की ओर रुचि बढ़ाने की बाते भी इसमें रहती हैं। और यथार्थ वह शैली है जिसमें सत्य सिद्धांत को ज्यों का त्यों बताया जाता है। बताने वाले महात्मा कोई–कोई होते हैं।

सिंहन की लेंहडी नहीं, हंसों की नहिंपांत।

लालों की नहिं बोरियां साधु न चलैं जमात।।

तो अब दुनिया की पापुलेशन (जनसंख्या) बढ़ गई है, सब बिगड़ गया है। सिंह तो एक दो ही होते हैं जंगल में, लेकिन आज देखते हो सेंचुरीज (आरक्षित वनों) में – तमाम भरे पड़े हैं। लेकिन उन्हें क्या सिंह कहा जा सकता है? यह तो नाम भर के सिंह हैं।

हंस का नाम सुनते हो, क्या कभी देखने को मिला है? अमृत का नाम सुना तो जाता है, लेकिन किसी को मिला नहीं आज तक। ये कुछ ऐसी बाते हैं जिनका पता किसी को है नहीं, बस बताए जा रहे हैं लोग एक दूसरे से। ऋषि–मुनि कोई–कोई होते थे। अब भीड़ लगी है–वेश बना लिया, हो गया। अब कोई करता तो है नहीं वह काम, जो ऋषियों मुनियों ने बताया है, किया है। कोई जानता ही नहीं। बताने वाला कोई हो, करने वाला कोई मिले। तब भजन होता है, तब साधना होती है। भगवान आज अगर आ जाय तो वह बेवकूफ बनकर रह जायगा। कौन पूंछेगा उसे? और जो उसके यथार्थ को समझेगा,उसे तो कितनी भी कीमत चुकानी पड़े तो भी नहीं छोड़ेगा।

हरिः